इकाई 8 आभास और सत्*

रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 परिचय

8.2 आभास और सत् की समस्या का बोध

8.3 प्लेटो

8.4 इमानुएल काण्ट

8.5 प्रोटागोरस और बर्कले

8.6 कुछ भारतीय दृष्टिकोण

8.7 सारांश

8.8 कुंजी शब्द

8.9 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई प्राथमिकरूप से, कुछ प्रमुख पाश्चात्य विचारकों के विचारों के माध्यम से "सत्" और "आभास" के प्रत्ययों/धारणाओं के भेद की छान–बीन का प्रयास है। इकाई में इस बात की भी संक्षिप्त चर्चा की गई है कि किस तरह यह समस्या भारतीय दर्शनों में व्यक्त हुई है, हालांकि इस पर विशद विवेचन "सत् के सिद्धान्त" इकाई 12 में किया गया है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के दौरान पाठक निम्नलिखित मुद्दों से परिचय प्राप्त करेंगे,

---

* डॉ. महक उप्पल, सह–प्राध्यापिका, दर्शन विभाग, हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय। अनुवाद– डॉ. आशुतोष व्यास, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली।

- सत् और आभास की दार्शनिक समस्या।
- आभास और सत् की समस्या पर प्लेटो, काण्ट, प्रोटागोरस, और बर्कले के विचार।
- आभास और सत् की समस्या पर *बौद्ध* और *अद्वैत वेदान्त* की चर्चाओं का संक्षिप्त विहंगावलोकन।

8.1 परिचय

आईये कुछ स्थितियों पर विचार करते हैं, जिनसे जीवन के किसी न किसी मोड़ पर आपका सामना हुआ होगा। उदाहरण के लिए, आप एक स्पष्ट स्वप्न/रात्रिस्वप्न से जागते हैं, जिसमें एक हत्यारा तलवार को लहराते हुए आपका पीछा कर रहा था, आपको यह अहसास है कि यह स्वप्नमात्र था और वास्तविकता में कुछ नहीं हुआ है। या कुछ दूरी से अपने मित्र की ओर हाथ लहराना, उसकी ओर बढ़ना और बाद में अहसास करना कि वह वास्तव में आपका मित्र नहीं था, बल्कि वह आपके मित्र से आश्चर्यजनकरूप से *सादृश्यता* रखने वाला और उसकी तरह *आभासित* (प्रतीत) होने वाला था। जल से आधे भरे हुए शीशे के बर्तन में डूबी हुई छड़ी आपको झुकी हुई *प्रतीत* होती है, जबकि आप जानते हैं कि छड़ी वास्तविकता में सीधी ही है। इस तरह जीवन भर, अनगिनत अनुभव हमारा ध्यान वस्तुएं जो "प्रतीत" होती हैं और जो वे "वास्तविकता" में हैं, के अन्तर की ओर खींचते हैं। सत्य, निश्चितता, संगतता, और अविरोधिता की कभी समाप्त न होने वाली हमारी खोज में, हम सतत यह चाह रखते हैं कि परम सत्य (वास्तविकता/सत्) को उन वस्तुओं, घटनाओं, अनुभवों, और वस्तु–स्थितियों, इत्यादि से अलग करें, जो सत्य (सत्) प्रतीत होते हैं, परन्तु केवल भ्रमात्मक प्रतीतियां (आभास) और अर्द्ध–सत्य हैं। रसल के अनुसार, "आभास/प्रतीति" और "सत्/वास्तविकता" के मध्य यह अन्तर वह सामर्थ्यवान क्षेत्र है, जिसने दार्शनिक सैद्धांतिकीकरण के आरम्भ से ही "दर्शन में अत्यधिक समस्या उत्पन्न की" (रसल, 2017, 11)।

8.2 आभास और सत् की समस्या का बोध

"सत् क्या है?", "किसे सत् कहा जाये?", "सत् का स्वरूप क्या है?", "हम कैसे जानते हैं कि कोई (मान लें अ*) सत् क्यों/कब है?", इत्यादि आधारभूत

* अ आत्म, अन्य, कोई वस्तु, सत्ता, वस्तु–स्थिति, या संवृत्ति या गुण में से कुछ भी हो सकता है।

तत्त्वमीमांसीय प्रश्नों को प्रस्तुत करने और उनके उत्तर देने के प्रयास में सिद्धान्तकार (दार्शनिक) बहुधा सत् को विशेषित और परिभाषित करने वाले मापदण्डों और शर्तों की मांग करते हैं या विवरण देते/बताते हैं। ये मापदण्ड इस तरह हैं कि यदि अ बताई गईं विशेषताओं को धारण करता है, तब अ को वास्तविक सत् माना जाता है; और यदि उन विशेषताओं को धारण नहीं करता है, तो अ को असत्, सत् जैसा प्रतीत होता हुआ, आभासित सत्, भ्रम के क्षेत्र में निर्वासित कर दिया जाता है या फिर साधारणतः "आभास" के रूप में पहचाना जाता है। जैसाकि एफ़. एच. बैडले ने भी टिप्पणी की है, आभास वह है जो "परम सत्य" के स्तर तक पहुँचने में असफल हो जाता है।

पाश्चात्य दार्शनिक विचारों के इतिहास में सिद्धान्तकारों में इस बात में स्पष्टरूप से भेद है कि उन्होंने सत् और आभास को किस तरह परिभाषित किया और पहचाना। हेराक्लिटस और पार्मेनाइडीज़, दोनों, इस बात में तो सहमत हैं कि परम सत् तक हमारी पहुँच और उसका बोध केवल बौद्धिक विमर्श से हो सकता है, न कि इन्द्रिय–अनुभव से, फिर भी दोनों इस बात में असहमत हैं कि सत् का सही स्वरूप क्या माना जाये। हेराक्लिटस का मानना है कि सत् को सम्भवन (बिकमिंग) और प्रवाह की अवस्था के द्वारा विशेषित किया जा सकता है। उनका विश्वास है कि वस्तुओं का स्थायित्व और अपरिवर्तनशीलता, इन्द्रियों के द्वारा दिया गया धोखा है। इसके विपरीत, ज़ीनोफेन्स, पार्मेनाइडीज, और ज़ीनो का मानना था कि सत् का परम/सत्य स्वरूप शाश्वत् अपरिवर्तनीय सत्ता (बीइंग) होना है। पार्मेनाइडीज कहते थे "एक अविभाजित सम्पूर्ण है और कुछ भी परिवर्तनीय नहीं है।" पार्मेनाइडीज का अनुसरण करते हुए ज़ीनो भी स्वीकृति देते हैं कि सत् परम और अपरिवर्तनीय है, और ज़ीनो ने सभी गतियों और बहुलताओं को भ्रमात्मक आभास माना। कुछ इसी तरह की अवधारणा मानते हुए प्लेटो ने सत् को अपरिवर्तनीय, परम सामान्यों के रूप में वर्णित किया, जिन्हें प्लेटो प्रत्यय (आइडिया) कहते हैं। प्लेटो के अनुसार, प्रत्ययों को केवल तर्कबुद्धि द्वारा समझा जा सकता है, और इन्द्रियों द्वारा हमारे समक्ष प्रकट विशिष्ट वस्तुएं (व्यष्टियां) आभासमात्र हैं और उन्हें अधिक से अधिक प्रत्ययों की धुंधली प्रतिलिपियां कह सकते हैं। अपनी 'संदेह पद्धति' का अनुसरण करते हुए, डेकार्ट ने तर्क दिया कि जिसमें भी शुद्धता एवं स्पष्टता की कमी है, और/अथवा जिस पर संदेह किया जा सकता है उसे पर्याप्तरूप से (पूर्णतया) सत् नहीं माना जा सकता है। इन्द्रियों द्वारा प्रकट जगत/संसार सतत परिवर्तनीय और अनिश्चित प्रतीत होता है, इससे यह कहा जा सकता है कि सत् को जानने के साधनरूप में इन्द्रियां अविश्वसनीय और संदेहास्पद हैं। सत् असंदिग्ध, स्पष्ट, और शुद्ध होना

चाहिए, अतः जो हमारे समक्ष इन्द्रियों द्वारा प्रकट होता है, सत् उससे भिन्न होना चाहिए।

ये और इस तरह की अन्य चर्चाओं के समीक्षा यह सुझाव भी देती है कि सत् और आभास के भेद (और अन्तर्सम्बन्ध) के बारे में विचारकों के विविध मत हैं। इन मुद्दों पर पाश्चात्य दार्शनिक विचार में मुख्यतः दो तरह के पक्ष प्रस्तुत हुए हैं। एक ओर वे विचारक हैं जो "परम सत्" जगत और "आभासित सत्" जगत के मध्य द्वैत को स्वीकारते हैं, और अभिकथन करते हैं कि "परम सत्" व्यावहारिक/प्रतिदिन के प्रत्यक्ष/इन्द्रिय अनुभव में प्राप्त "हमें प्रतीत" वस्तुओं से ऊपर/उच्च एवं भिन्न (अलहदा) है। इसके अतिरिक्त, द्वैतवाद का समर्थन करने के बावजूद, ये विचारक इस बात में असहमत हो सकते हैं कि "परम सत्" का ज्ञान सम्भव है या नहीं; हम जो ज्ञानमीमांसीय अभिकर्ता (जो जान सकते हैं या जानने में समर्थ हैं) हैं, वे परम सत् के सत्य स्वरूप के बारे में क्या कुछ भी जान सकते हैं या नहीं। दृष्टान्ततः, हेराक्लिटस, पार्मेनाइडीज, ज़ीनो, प्लेटो, डेकार्ट, इत्यादि द्वैतवाद को बनाये रखते हुये, यह स्वीकारते हैं कि सत् ज्ञान के दायरे में है (सत् का ज्ञान सम्भव है); जबकि काण्ट द्वैतवाद को स्वीकारते हुए, परम सत् के सही स्वरूप के ज्ञान की सम्भावना को अस्वीकारते हैं। इसके विपरीत, प्रोटागोरस और बर्कले जैसे विचारक हैं, जो द्वैत को अस्वीकार करते हैं, और अभिकथन करते हैं कि वास्तव में इन्द्रिय अनुभव में और उसकेके माध्यम से प्रकट जगत और परम सत् के मध्य कोई भेद नहीं है। इन विचारकों के लिए, वास्तव में प्रतीति का जगत (आभासित जगत) "परम सत्" जगत है। इन्द्रिय अनुभव से प्रकट/प्रस्तुत से अधिक सत्य/शुभतर/अधिक पूर्ण/अधिक सत् के अलावा अन्य किसी श्रेणी या प्रकार का कोई और सत् नहीं है।

आगामी कुछ अनुभाग इन दावों/दृष्टिकोणों के बारे में विस्तृत चर्चा प्रस्तुत करेंगे।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) आभास और सत् की समस्या की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

8.3 प्लेटो

प्लेटो उन प्रारम्भिक विचारकों में थे जिन्होंने आभास और सत् की समस्या को सम्बोधित और अभिव्यक्त किया। प्लेटो ने अपनी परम सत् की अवधारणा को अपने प्रत्यय/सामान्य/आकारों के सिद्धान्त के माध्यम से लेखांकित किया। प्रत्यय/सामान्य/आकार पृथक् और स्वतन्त्र अस्तित्व वाले शाश्वत और वस्तुनिष्ठ सत्ताएं (ऑब्जेक्टिव एन्टिटी) हैं। प्लेटो के अनुसार, प्रत्ययों का अस्तित्व स्वयं में और स्वयं के द्वारा है। प्रत्यय अचर, अगोचर, परम, और अपरिवर्तनीय पदार्थ हैं। प्रत्ययों के संसार को परम सत्/परम भाव/परम सत्ता (बीइंग) का संसार कहा जाता है, और इसके विपरीत व्यष्टियों, इन्द्रिय–प्रदत्त वस्तुओं के संसार को सतत सम्भवन (सतत गतिशील/परिवर्तनीय; बिकमिंग) का संसार कहा जाता है।

इन्द्रिय–प्रत्यक्ष के माध्यम से हमारे द्वारा अनुभव किया गया जगत/संसारा सत्य/परम सत् की छायामात्र अथवा धुंधली प्रतिलिपिमात्र है। जैसे आपका फोटोग्राफ जो आप हैं, उसका प्रतिनिधि और छायाप्रति (प्रतिलिपि) है, वैसे ही संवेदन की वस्तुएं वे छापे हैं, जो तत्सम्बन्धी प्रत्ययों के अंश ग्राहक, नकल, संकेतक, और हिस्सेदार (भागीदार) हैं। प्लेटो के अनुसार, सत् वह नहीं है, जो इन्द्रिय–प्रत्यक्ष से हमारे समक्ष प्रकट (प्रतीत) होता है। उनके लिए केवल प्रत्यय ही सत् हैं, जबकि व्यक्ति/व्यष्टियां आभासमात्र हैं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष का जगत/संसार आभासमात्र का जगत/संसार है; जबकि वास्तविक सत् संप्रत्यय और प्रत्यय हैं, जिनका बोध केवल चिंतन और तर्कबुद्धि से ही हो सकता है। परम अपरिवर्तनीय सत् का ज्ञान करवाने में इन्द्रिय प्रत्यक्ष संदेहास्पद, भ्रान्तिजनक, और असमर्थ है। प्लेटो के लिए, "प्रत्ययों पर विचार किया जा सकता है (तर्कबुद्धि के विषय), लेकिन इन्द्रिय प्रत्यक्ष (इन्द्रियों द्वारा अनुभव नहीं), और जो प्रत्यक्षगम्य है उसका प्रत्यक्ष किया जा सकता है, विचार नहीं" (मसीह 55)।

8.3.1 गुफा का रूपक

प्लेटो अपनी पुस्तक रिपब्लिक के अध्याय 7 में, गुफा के रूपक नाम से प्रसिद्ध दृष्टान्त का सहारा लेते हैं। इस दृष्टान्त से न केवल प्लेटो के प्रत्यय सिद्धान्त को समझा जा सकता है, बल्कि प्लेटो द्वारा प्रतिपादित सत् के स्वरूप, ज्ञान के स्वरूप, और आभास और सत् के मध्य अन्तर को समझा जा सकता है।

इस रूपक में कल्पना की गई है कि एक अंधेरी गुफा में कुछ कैदी जन्म से ही बंधे हुए हैं। उन कैदियों का मुंह गुफा की दीवार की ओर है, और उनकी गर्दनें और हाथ इस तरह बंधे हैं कि न तो वे हिल सकते हैं और गुफा की दीवार के अलावा कुछ और नहीं देख सकते हैं। वे उनके पीछे जलने वाली आग के कारण दीवार पर उभरी छायाओं को ही देखने में समर्थ हैं। वे इन्हीं छायाओं को हमेशा सत् के रूप में देखते हैं। एक दिन एक कैदी स्वतन्त्र किया जाता है और उसे गुफा के बाहर लाया जाता है। सूर्यप्रकाश के कारण कैदी की आंखें चौंधिया जाती हैं और पहले–पहल वह कठिनाई से ही कुछ देख सकता है। लेकिन जैसे ही उसकी आंखें प्रकाश के साथ तालमेल बैठाती हैं, वह "सत्" वस्तुओं के सत्–जगत को देखना आरम्भ करता है। सत् जगत को जानकर, उसे अहसास होता है कि जिसे (छायाएं) वह सत् माने हुए था, वह सत् नहीं था, बल्कि सत् की नकलें ही थीं। कैदी को अहसास होता है कि अभी तक वह आभास के संसार में जी रहा था, और उसे ही सम्पूर्ण सत्य और परम सत् माने हुये था, जबकि वह केवल भ्रममात्र, सत् की धुंधली प्रतिलिपि था।

गुफा में दिखने वाली छायाएं इन्द्रियों के माध्यम से अनुभव होने वाले भौतिक जगत की प्रतिनिधि हैं। यह भौतिक जगत सतत परिवर्तनीय, भ्रान्तिजनक, संदेहास्पद, और अनिश्चित है। जबकि गुफा के बाहर सत् जगत वह है, गुफा की छवियां जिसकी धुंधली छायाएं हैं, जो आकारों और प्रत्ययों का संसार है, जो अपरिवर्तनीय, असंक्रमणीय/अगोचर, शाश्वत संसार है। प्लेटो का मानना है कि अधिकांश लोग गुफा के कैदियों की तरह हैं, जो सत् के स्वरूप से अनभिज्ञ होकर अपने जीवन को जी रहे हैं, और आभासों को परम सत् समझने की भूल कर रहे हैं। (प्लेटो के अनुसार) केवल दार्शनिक, जो तर्कबुद्धि और चिंतन के माध्यम से आकारों/प्रत्ययों को जानता है, सत्य (यथार्थ) ज्ञान रखता है।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) आभास और सत् सम्बन्धी प्लेटो के विचारों को समझने में गुफा के रूपक के महत्व की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

8.4 इमानुएल काण्ट

अपनी पुस्तक *क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन* (शुद्ध बुद्धि की मीमांसा) में, इमानुएल काण्ट हमारी बौद्धिक संज्ञानात्मक क्षमता के स्वरूप, शर्तें, साधनों, और सीमा की छान–बीन का प्रयास करते हैं। ध्यातव्य है, उनका उद्देश्य केवल इस प्रश्न का उत्तर देना नहीं था, कि 'जो हम जानते हैं, वह कैसे जानते हैं', अपितु यह भी था कि 'वह क्या है जिसके जानने के बारे में हम वैध दावा कर सकते हैं'? और 'ज्ञान के वास्तविक और सम्भाव्य विषय क्या हैं'? इन मुद्दों के आलोक में काण्ट ने "आभास" या "संवृत्ति/व्यावहारिक" और "वस्तुएं स्वयं में" या "पारमार्थिक" के मध्य अन्तर किया। अपने परानुभविक/अनुभवातीत/पारमार्थिक प्रत्ययवाद (ट्रांसेन्डेन्टल आईडियलिज्म) के सिद्धान्त के माध्यम से काण्ट ने दावा किया कि हमें केवल "आभासों" अथवा दैनन्दिन अनुभव में आने वाली वस्तुओं का यथार्थ, वस्तुनिष्ठ, और प्राग्नुभविक (अनुभव से पूर्व या अनुभव से निरपेक्ष' अ प्रायरी) ज्ञान हो सकता है, लेकिन "वस्तुएं जैसी वे हैं" अथवा "वस्तुएं स्वयं में (स्वलक्षण; थिंग इन इटसेल्फ)" का ज्ञान कभी नहीं हो सकता है (स्क्रूटन 2001, 55)।

काण्ट का मानना है कि हमारा सम्पूर्ण ज्ञान (एक ओर) दिक् और काल नामक अन्तःप्रज्ञा के दो रूपों और (दूसरी ओर) बोध (बुद्धि) की बारह कोटियों से परिच्छिन्न है। ये एकसाथ ज्ञान की सम्भावना की शर्तों का विधान करते हैं। अब, चूंकि हमारा सारा ज्ञान *परिच्छिन्न* (किसी से सीमित) है, इससे यह आपादित होता है कि जो भी अपरिच्छिन्न (पारमार्थिक/न्यूमिना की एक मुख्य चारित्रिक विशेषता) है वह स्पष्टरूप से *अज्ञेय* (जिसे जाना न जा सके) है। जब भी हम अपने बोध में वस्तुनिष्ठता और सत्य तक पहुँचने की आकांक्षा करते हैं, हम वस्तु 'जैसी वह है (स्वलक्षण)', परमतः निष्पक्ष, अपरिच्छिन्न, किसी भी दृष्टिकोण से अमिश्रित तक पहुँचने की आकांक्षा करते हैं। काण्ट के परानुभविक प्रत्ययवाद के अनुसार, "वस्तु स्वयं में", अथवा पारमार्थिक, ज्ञान के दायरे में नहीं है, और इसीलिए, जिस तक हमारी पहुँच हो सकती है या है, वह परिच्छिन्न आभासों का ज्ञान है।

इस पर ध्यान देना आवश्यक है कि अपनी क्रांतिकारी अपील के बावजूद काण्ट के परानुभविक प्रत्ययवाद की आलोचना इस आधार पर हुई है कि आभास और सत्, संवृत्ति और परमार्थ; आनुभविक विषय और प्राग्नुभविक विषयों के सांप्रत्ययीकरण और वर्णनों में स्पष्ट भ्रामकता है। यह अभी भी अकादमिक बहस का मुद्दा है कि इन

पदों और वाक्यांशों के प्रयोग से क्या काण्ट विभिन्न प्रकार की सत्ताओं या विषयों के मध्य, विभिन्न सत्तामीमांसीय परिक्षेत्रों जैसेकि सत् के विभिन्न स्तरों के मध्य अन्तर करने का प्रयास कर रहे थे, या फिर वह उन्हें एक ही सत्तामीमांसीय परिक्षेत्र के विभिन्न आयामों की तरह देख रहे थे।

इन भ्रामकताओं के बावजूद, यह स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि पारमार्थिक (न्युमिना) अनुभवातीत प्रत्यय जगत/विषय का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि काण्ट ने पारमार्थिक के संप्रत्यय का उपयोग नकारात्मक ढंग से किया, यानि मुख्यतः ज्ञान की सीमाओं का पता लगाने के लिए; न कि सकारात्मक ढंग से, यानि 'वस्तु स्वयं में' के या 'परम अपरिच्छिन्न सत्' के स्वरूप के वर्णन के लिए। 'वस्तु स्वयं में' वाक्यांश उस सत्ता या जगत को संदर्भित नहीं करता, जो इन्द्रियों के माध्यम से "प्रतीत" की अपेक्षा अधिक सत् है, बल्कि इसका प्रयोग "दृष्टिकोणरहित ज्ञान के अननुभूत आदर्श के प्रतिनिधि के रूप में" हुआ है" (स्क्रूटन 2001, 56)।

बोध प्रश्न III

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) काण्ट द्वारा दिये गये परानुभविक प्रत्ययवाद के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

8.5 प्रोटागोरस और बर्कले

"व्यक्ति/मनुष्य सभी वस्तुओं का मापदण्ड है; उसके लिए जो है, वही सत्य है; जो नहीं है, वैसा सत्य नहीं है", प्रोटागोरस की इस उक्ति को समझना सोफिस्टों के दर्शन और विशेषरूप से उनके ज्ञान–सिद्धान्त को एवं परोक्षरूप से उनकी तत्त्वमीमांसा को समझने के लिए आवश्यक है। इस कथन में प्रसिद्धतम सोफिस्ट विचारक प्रोटागोरस ने इन्द्रिय और तर्कबुद्धि के अन्तर को सिरे से नकार दिया। जबकि इन्द्रिय और तर्कबुद्धि का अन्तर आरम्भिक ग्रीक विचारकों विशेषरूप से

पार्मेनाइडीज और हेराक्लिटस के दर्शन में प्रमुख स्थान रखता था। पार्मेनाइडीज और हेराक्लिटस का मानना था कि परम सत् के सत्य स्वरूप को तर्कबुद्धि की सहायता से ही जाना जा सकता है और इन्द्रियां आभास के परे कुछ भी प्रकट करने में असमर्थ हैं। इस मत के विरुद्ध प्रोटागोरस यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे कि प्रत्येक व्यक्ति सत्य और सत् का स्वयं ही पैमाना (मापदण्ड) है। सोफिस्टों की तत्त्वमीमांसा और ज्ञानमीमांसा को सापेक्षतावादी कहा जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि प्रोटागोरस कहते थे, "प्रत्येक व्यक्ति की संवेदनाओं और प्रतिबिम्बों (छापों/संस्कारों) के सिवाय कोई भी और सत्य नहीं है" (स्टेस 2003, 114)। हमारे विषयीनिष्ठ संवेदन और अनुभव हमारे लिए सत् हैं। संवेदनों और छापों (संस्कारों) से ऊपर और परे सत् की अन्य, बेहतर (अधिक अच्छा), अधिक पूर्ण, या अधिक वस्तुनिष्ठ श्रेणी नहीं है। जो मुझे सत्य प्रतीत होता है वह मेरे लिए सत्य है, और जो आपको सत्य प्रतीत होता है, वह आपके लिए सत्य है। आभास (प्रतीति) "वस्तु स्वयं में (स्वलक्षण)" है। सत्य और सत् वह है जो वैयक्तिक और विषयीनिष्ठ संवेदन हमारे समक्ष प्रकट होते हैं। मृगतृष्णा (रेगिस्तान में जल देखना) को देखना, उसी तरह से सत्य है, जिस तरह से बालू को देखना; प्यास का अनुभव एक स्वप्न सत्य है, जैसे दौड़ते हुए प्यास लगना। पृथ्वी गोल है उसी तरह सत्य है जिस तरह यह कथन कि पृथ्वी पानी पर तैरती सीधी सपाट तश्तरी। अतः प्रोटागोरस आभासित जगत और सत् जगतसंसार के मध्य कोई द्वैत नहीं स्वीकारते। उनके लिए तो, आभास और सत् अविभक्त हैं, आभास सत् है, और सत् आभास से ऊपर, या परे कुछ भी नहीं है।

जॉर्ज बर्कले एक प्रत्ययवादी/विज्ञानवादी (आईडियलिस्ट) थे जिनका मानना था कि वस्तुएं वही हैं, जैसीकि वे हमें इन्द्रिय–प्रत्यक्ष में प्रतीत होती हैं। बर्कले के लिए, सत् उस अति–मन (मन से परे) जगत में निहित नहीं होता है, जो ज्ञानमीमांसीय दायरे में हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है। उनके लिए सत् और अस्तित्व प्रत्यक्ष में निहित होते हैं। उनका कथन है "*एस्स एस्ट पर्सिपि* (दृश्यते इति वर्तते/सत्ता अनुभवमूलक है)"। वस्तुएं कैसे और कब प्रत्यक्ष हुईं, के अतिरिक्त कोई भी सत् नहीं है। किसी चेतन मन में प्रत्ययों का ही साक्षात् प्रत्यक्ष किया जा सकता है, अतः सत् मनःपरतन्त्र है। मन से स्वतन्त्र किसी द्रव्य, पदार्थ, विषय इत्यादि की सत्ता भ्रममात्र है। वे मनःस्वतन्त्र सत् की सम्भावना को नकारते हैं। चूंकि, किसी विषय का अस्तित्व किसी चेतन मन के द्वारा प्रत्यक्ष/अनुभव किये जाने पर निर्भर करता है, अतः प्लेटो के असमान, बर्कले के लिए सत् वह नहीं है, जो इन्द्रिय प्रत्यक्ष में प्रदत्त न हो, और काण्ट के असमान, बर्कले सत् को अज्ञेय नहीं मानते। बर्कले का प्रत्ययवाद आपादित करता है कि आभास और सत् में अभेद है।

8.6 कुछ भारतीय दृष्टिकोण

आभास और सत् के भेद के बारे में विस्तृत चर्चाएं भारतीय दार्शनिक विचार के *बौद्ध* और *अद्वैत वेदान्त* दर्शनों में खोजी जा सकती हैं। बौद्धमत का एक केन्द्रीय विचार क्षणभंगवाद है। इस दर्शन के अनुसार, सबकुछ क्षणिक, संक्रमणीय, और क्षणभंगुर है। सत् का सत्य स्वरूप क्षणभंगुर होना है, अर्थात् यह सतत और अतिशीघ्र परिवर्तनीय है। प्रत्येक क्षण अस्तित्व में आता है, और नष्ट हो जाता है। इस कारण से, स्थायित्व की कोई भी झलक आभासमात्र और भ्रम है। सांप्रत्ययीकरण के कारण, और नाम, रूप, जाति, इत्यादि देने की प्रक्रिया में विविक्त, क्षणभंगुर, अस्थायी क्षण काल में सतत और अस्तित्ववान प्रतीत होते हैं। बौद्ध दर्शन के माध्यमिक सम्प्रदाय के दार्शनिक नागार्जुन ने सत् की परिभाषा *निष्प्रपंच* (प्रपंच रहित), *प्रपंचशून्य, स्वभावशून्य, चतुष्कोटिविनिर्मुक्त* और *साररहित* के रूप में दी है। सत् को, 'है' (अस्ति), 'नहीं है' (नास्ति), 'है' और 'नहीं है, दोनों (अस्ति नास्ति च), और 'है' और 'नहीं है', दोनों नहीं (न अस्ति न नास्ति च), इनमें से किसी भी दायरे/कोटियों में नहीं रखा जा सकता है। हमारी बौद्धिक व्यवस्था की वजह से, हम वस्तुओं को इन कोटियों की सहायता से ग्रहण करते हैं और इसीलिए नामरहित एवं रूपरहित सत् है और नहीं है, इत्यादि विशेषताओं सहित प्रतीत होती है। वास्तविकता यह है कि सत् को कोई भी विशेषण नहीं दिया जा सकता है।

शंकराचार्य के अनुसार सत् *अद्वय* है। यह अंश–रहित और परिवर्तनरहित अचल सत्ता है। इस *परम सत्* या *पारमार्थिक सत्ता* के विपरीत विकार, संक्रमण, या परिवर्तन *प्रातिभासिक* अथवा *व्यावहारिक सत्ता* के दायरे में है। जहाँ परिवर्तन द्वैत को पूर्वधारित करता है, वहीं सत् नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त परम सत्ता के रूप में निर्वचित किया जाता है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार सत् *त्रिकाल अबाधित* है, और जो भी तीनों कालों (*जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति*) में बाधित हो वह आभासमात्र है। लेकिन यह आभासमात्र पूर्णतः "असत्" नहीं है। यह न तो पूर्णतः असत् है (खरगोश के सींग की तरह), न ही पूर्णतः सत् (ब्रह्म की तरह)। और चूंकि न तो यह सत् है और न ही असत्, इसीलिए इसे *अनिर्वचनीय* कहा जाता है।

8.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई "आभास" और "सत्" के प्रत्ययों के मध्य अन्तर से परिचित कराने का प्रयास है। आभास और सत्, क्रमशः, इन्द्रिय–अनुभव यह विश्वास देता है कि यह वस्तु–स्थिति है और वास्तव में जो वस्तु–स्थिति है (जो प्रतीत होता है और जो वास्तव में है), इन दोनों के मध्य अन्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पाश्चात्य दार्शनिक विचार में, इस मुद्दे पर अधिकतर दार्शनिक चर्चाएं आभास और सत् की प्रकृति, अवस्था, कारण और अन्तर्सम्बन्ध के बारे में प्रश्नों के इर्द–गिर्द घूम रही हैं। इन चर्चाओं में यह भी सम्मिलित है, कि ये दोनों अवधारणाएं क्या परस्पर–सम्बन्धित हैं और हैं तो कैसे सम्बन्धित हैं?; क्या वे दोनों पूर्णतः अलग और स्वतन्त्र हैं?; अथवा क्या आभास सत् का प्रतिनिधि है? इत्यादि। यद्यपि यह समस्या मुख्यतः तत्त्वमीमांसीय और सत्तामीमांसीय है, तो भी इसके साथ ही यह समस्या मानव प्रकृति, और वस्तुओं की जानने की प्रक्रिया, दायरा, और हमारी क्षमता से सम्बन्धित प्रश्नों से भी गुंथी हुई है।

8.8 कुंजी शब्द

आकारों/स्वरूप का सिद्धान्त : प्लेटो का तत्त्वमीमांसीय सिद्धान्त जिसमें स्वरूप को शाश्वत और वस्तुनिष्ठ सत्ता माना जाता है, जिनका आभासों के संसार से पृथक और स्वतन्त्र अस्तित्व है।

परानुभविक प्रत्ययवाद : काण्ट का वह सिद्धान्त जिसमें यह माना जाता है कि हमें "आभासों" का ही प्राग्नुभविक ज्ञान हो सकता है, "वस्तुएं स्वयं में (स्वलक्षण)" का ज्ञान नहीं।

एस्से एस्ट पर्सिपि (दृश्यते इति वर्तते) : बर्कले का वह विचार जिसमें माना जाता है "दृश्यते इति वर्तते (जो प्रत्यक्ष है वही है/उसी की सत्ता है)।

8.9 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

अन्नस, जूलिया. *प्लेटोः अ वेरी शॉर्ट इन्ट्रोडक्शन.* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003.

मसीह, याकूब. *अ क्रिटिकल हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न फिलॉसोफी (ग्रीक, मिडिवल एण्ड मॉर्डन).* देल्हीः मोतीलाल बनारसीदास प्रा. लि., 2013.

ऑस्बर्न, कैथरीन. *प्रिसोक्रेटिक फिलॉसोफीः अ वेरी शॉर्ट इन्ट्रोडक्शन.* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004.

रसल, बर्ट्रेंड. *द प्रॉब्लम्स ऑफ फिलॉसोफी.* देल्हीः प्रभात प्रकाशन, 2017.

स्क्रूटन, रोजर. *काण्टः अ वेरी शॉर्ट इन्ट्रोडक्शन.* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001.

शर्मा, चन्द्रधर. *अ क्रिटिकल सर्वे ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी.* देल्हीः मोतीलाल बनारसीदास प्रा. लि., 2016.

स्टेस, डब्ल्यू. टी. *अ क्रिटिकल हिस्ट्री ऑफ ग्रीक फिलॉसोफी.* देल्हीः खोसला पब्लिशिंग हाऊस, 2003.

थिली, फ्रेंक एण्ड लेजर वुड. *अ हिस्ट्री ऑफ फिलॉसोफी.* अल्लाहाबादः सेन्ट्रल बुक डिपो, 1978.

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) "आभास" और "सत्" के प्रत्ययों के मध्य अन्तर को वस्तुएं जो प्रतीत होती हैं और जो वे वास्तव में हैं के अन्तर के रूप में समझा जा सकता है। पाश्चात्य दार्शनिक विचार के इतिहास में सिद्धान्तकारों के मध्य सत् की परिभाषा और विशेषीकरण में अन्तर है। पाश्चात्य दार्शनिक विचार में इस सम्बन्ध में दो तरह के विचार हैं। एक ओर वे विचारक हैं जो "परम सत्" और "प्रतीति सत्" के मध्य द्वैत स्वीकारते हैं, और अभिकथन करते हैं कि "परम सत्" द्वैनन्दिन के इन्द्रिय–अनुभव में प्रतीत होने वाली वस्तुओं से परे और अलहदा है। इसके विपरीत, वे विचारक हैं जो मानते हैं कि आभास का संसार वास्तव में "परम सत्" है।

बोध प्रश्न II

1) गुफा के रूपक से न केवल हम प्लेटो के स्वरूप सिद्धान्त को समझ सकते हैं, बल्कि यह भी समझ सकते हैं कि प्लेटो के लिए सत् की प्रकृति, ज्ञान की प्रकृति, और आभास एवं सत् के मध्य क्या अन्तर है। गुफा में छायाएं दैनन्दिन के इन्द्रिय–अनुभव में आने वाले भौतिक संसार की प्रतिनिधि हैं। यह संसार सतत परिवर्तनीय, भ्रमात्मक, संदेहास्पद, और अनिश्चित है। जबकि गुफा के बाहर सत् संसार स्वरूप और प्रत्ययों का संसार है। गुफा के प्रतिबिम्ब इस संसार की धुंधली परछाईयां हैं। यह संसार अपरिवर्तनीय, शाश्वत् है। प्लेटो का मानना है कि अधिकांश लोग गुफा के कैदियों की तरह हैं, जो सत् के सत्य स्वरूप को जाने बिना, और आभास को परम सत् समझते हुए अपना जीवन जी रहे हैं।

बोध प्रश्न III

1) काण्ट ने "आभास" अथवा "संवृत्ति" और "स्वलक्षण" अथवा "परमार्थ" के मध्य अन्तर किया है। अपने अतीन्द्रिय प्रत्ययवाद के माध्यम से काण्ट ने यह दावा किया

कि हमें केवल "आभासों" का ही शुद्ध (यथार्थ), वस्तुनिष्ठ, और प्राग्नुभविक ज्ञान हो सकता है, "स्वलक्षण" का नहीं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY